समयसार, १३ वीं गाथा। यहाँ आया है — **सर्व काल में अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं....** क्या कहा? यह जीव जो आत्मा है, उसकी पर्याय में नौ प्रकार के तत्त्व उत्पन्न होते हैं। यहाँ नौ तत्त्व में जीव का एक अंश / पर्याय है, वह वहाँ नौ में लेना और यहाँ अजीव का ज्ञान होता है, उसे अजीव लेना। अजीव पदार्थ नहीं लेना। यह जीव अपनी पर्याय में — जो एक अंशरूप है, इन नौ तत्त्व में उसे जीव कहा और अजीव जो जड़ है, उसका ज्ञान होता है, उसको यहाँ अजीव कहा और अपनी पर्याय में शुभभाव होने योग्य होते हैं। तब सामने कर्म जो निमित्त है, उसको द्रव्यपुण्य कहा और भावपुण्य अपनी पर्याय में योग्यता से — अपनी योग्यता से उस काल में शुभभाव होता है, उसको जीव भावपुण्य कहा। वैसे ही 'पाप' —

अपनी योग्यता से जीव में पापतत्त्व की योग्यता से उत्पन्न होता है वह भावपाप और उसमें निमित्त जो पूर्व का कर्म है, उसे द्रव्यपाप कहा जाता है। आहा! ऐसे 'आस्रव' अपनी पर्याय में शुभ-अशुभ आस्रव होने योग्य से उस समय उत्पन्न होने योग्य है, उत्पन्न होता है, अपनी योग्यता से, कर्म से नहीं। कर्म वहाँ निमित्त है परन्तु निमित्त से होता है — ऐसा नहीं। समझ में आया? आस्रव, पुराना कर्म निमित्त, जो पुराना उसे द्रव्य-आस्रव कहते हैं और भाव-आस्रव, अपनी पर्याय में जो उत्पन्न होता है, वह भाव आस्रव है। बाद में संवर, निर्जरा और मोक्ष। बन्ध, राग में स्वयं के कारण से रुक जाते हैं वह भावबन्ध है और पुराना कर्म जो है, वह द्रव्यबन्ध है।

और संवर — अपनी योग्यता से शुद्धि की उत्पत्ति हुई, वह जीव संवर कहा जाता है और कर्म का उदय इतना नहीं आया और कोई नया कर्म नहीं आया, उसे द्रव्यसंवर कहते हैं और अपनी पर्याय में शुद्धि की वृद्धि हुई, उसे भावनिर्जरा कहते हैं और कर्म का उदय जो खिर जाता है, उसको द्रव्यनिर्जरा कहते हैं। आहाहा! और अपनी पर्याय में मोक्ष होने योग्य जो केवलज्ञान पर्याय उत्पन्न हुई, वह भावमोक्ष है और उसमें कर्म का अभाव हुआ, उसे द्रव्यमोक्ष कहते हैं — ऐसे नौ तत्त्व पर्याय में उत्पन्न होते हैं परन्तु वह नौ व्यवहारनय से, पर्यायनय से देखने पर नौ हैं परन्तु उसमें सम्यग्दर्शन उससे उत्पन्न नहीं होता। आहा! समझ में आया?

यह कहते हैं देखो! तब सम्यग्दर्शन कैसे होता है? **सर्व काल में अस्खलित....** आहाहा! सर्व काल में अपना ज्ञायकभाव.... पर्याय में आस्रव आदि हुआ तो भी वस्तु तो अस्खलित ज्ञायकभाव परिपूर्ण रही है। आहाहा! नरक और निगोद में, निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान की पर्याय हुई, तथापि वहाँ वस्तु तो अस्खलित ज्ञायकभाव ही रही है। आहाहा! सूक्ष्म है भाई! और केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तो भी वस्तु तो त्रिकाली ज्ञायकभाव है ही है। केवलज्ञान हुआ तो ज्ञायकभाव में कमी हो गयी या अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान का क्षयोपशम रहा तो ज्ञायक में अधिकता हो गयी — ऐसी बात है ही नहीं। ज्ञायक तो त्रिकाली एकरूप हीनाधिकतारहित चीज है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई!

यह त्रिकाल **सर्व काल में अस्खलित.....** आहाहा! **एक जीवद्रव्य के स्वभाव....** त्रिकाली ज्ञायक परमपारिणामिक स्वभाव। रागादि आस्रव वह उदयभाव; संवर आदि क्षयोपशमभाव; केवलज्ञानादि क्षायिकभाव सबसे भिन्न.... आहाहा! एक द्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर, उस द्रव्यस्वभाव सन्मुख झुकने से, **अनुभव करने पर...** आहाहा! एक जीवद्रव्य का स्वभाव एकरूप जो त्रिकाल है, जो अपने सामान्यस्वभाव में से कभी विशेष में नहीं आया; केवलज्ञान की पर्याय में भी सामान्यभाव नहीं आया। आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली भगवान एकरूप जीवद्रव्य का स्वभाव, उसके समीप जाने पर, है? आहाहा! **अभूतार्थ है....** तो फिर नौ तत्त्व झूठा हुआ। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

भगवान आत्मा ज्ञायक आनन्द, शान्तरस की... जैसे शीतल-शीतल बर्फ की क्या कहलाती है वह? शिला। बर्फ की शिला होती है न, पचास-पचास मन की बर्फ -बर्फ शीतल; वैसे भगवान आत्मा अकषाय स्वभाव का पिण्ड बर्फ जैसा शीतल है। वह त्रिकाली शान्तरस का पिण्ड प्रभु जो वस्तु पर्याय में — केवलज्ञान में भी नहीं आती और अक्षर के अनन्तवें भाग में भी नहीं आती। अरे! जो मोक्ष का मार्ग-सम्यग्दर्शन है, जिसके समीप जाने पर सम्यग्दर्शन होता है, वह पर्याय भी अन्दर नहीं जाती और उस पर्याय में भी द्रव्यसामान्य नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म विषय है, भगवान! आहाहा! यहाँ कहते हैं कि **अनुभव करने पर....** एक द्रव्यस्वभाव त्रिकाली है, उसका — स्वभाव के अनुसार होकर अनुभव करने पर... तो अनुभव है, वह पर्याय है। अनुभव है वह पर्याय है और उसका विषय एकरूप द्रव्यस्वभाव है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

ऐसा अनुभव करने पर, नव के भेद, अभेद की दृष्टि में नव के भेद झूठे हैं। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है, तथापि सम्यग्दर्शन की पर्याय अस्खलित स्वभाव में नहीं जाती और पर्याय में अस्खलित द्रव्यस्वभाव नहीं आता, तथापि सम्यग्दर्शन की पर्याय अस्खलित स्वभाव की प्रतीति और ज्ञान करती है। ज्ञान की पर्याय अस्खलित स्वभाव का ज्ञान करती है और अस्खलित सामान्यस्वभाव का श्रद्धापर्याय प्रतीति करती है, तथापि प्रतीति और ज्ञान की पर्याय में द्रव्यस्वभाव नहीं आता। आहाहा! ऐसी चीज है। यह नौ भेद

अभूतार्थ हो गया। वह दृष्टि के विषय में नहीं आया, तो है नौ, तथापि गौण करके असत्यार्थ हो गया। मुख्य द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करने से अनुभव करने पर भूतार्थ हो गया और पर्याय का नौ भेद है, वह गौण करके, लक्ष्य छोड़ करके उससे इस ओर आये तो यह नौ तत्त्व अभूतार्थ हो गया, विषय है नहीं, द्रव्य के स्वभाव की दृष्टि से ये हैं नहीं, इसलिए अभूतार्थ कहा गया है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, कठिन!

इसलिए उन नवों तत्त्वों में,.... देखो! नौ तत्त्व के भेद में भूतार्थनय से, भूतार्थनय से — त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि से आहाहा! **एक जीव ही प्रकाशमान है।** है? नौ भेदों में, विशेष प्रकारों में — उसकी दृष्टि छोड़कर तो अकेला सामान्य प्रकाशमान होता है। आहाहा! ऐसा दुर्लभ है। यह तो अभी पहली (दशा) सम्यग्दर्शन-ज्ञान — चौथे गुणस्थान की बातें हैं भगवान! इसके बिना ये सब दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा सब संसार है। आहाहा! परिभ्रमण का कारण है। आहाहा!

भगवान आत्मा इन नौ तत्त्वों में अर्थात् नौ के भेद में भूतार्थनय से त्रिकाली की दृष्टि कराने को यह जीव ही प्रकाशमान है, नौ भेद वहाँ नहीं। आहाहा! सूक्ष्म है भाई! परन्तु कल्याण करना हो तो उसे करना पड़ेगा! अरे! चौरासी लाख में-अवतार में दुःखी है। आकुलता में रागरूपी अग्नि से जल रहा है। आहाहा! 'राग आग दाह दहै सदा....' आहाहा! राग की आग में अनादि से दाह जलती है। आहाहा! उस कषाय अग्नि में... राग भी अग्नि है तो वह जलती है और अग्नि से प्राणी अत्यन्त दुःखी है। चाहे तो सेठ हो या राजा हो, या देव हो, वह राग की अग्नि में जलता है। आहा! उसे छूटना हो, उससे छूटना हो तो नव तत्त्व की पर्याय में जो भेद हुआ, उसका लक्ष्य छोड़कर एक जीव द्रव्यस्वभाव के समीप जाने पर तुझे सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! समझमें आया?

इस प्रकार यह एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ.... देखो! आहाहा....! एकरूप एकत्व अर्थात् सामान्य, जो वे अनेक-नौ भेद थे, उनसे छूटकर, त्रिकाली ज्ञायकभाव का अनुभव करने पर एकत्वपना आया। इस प्रकार यह एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ... आहाहा! **शुद्धनयरूप से अनुभव किया जाता है....** शुद्धनय अर्थात् ज्ञान की जो शुद्ध पर्याय, उसका विषय जो ध्रुव, उस शुद्धनय से अनुभव किया जाता है...

आहाहा! अन्तर्मुख होने की दृष्टि से और अन्तर्मुख होने के ज्ञान के नय से वह अनुभव में आता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! और **यह अनुभूति है, सो आत्मख्याति है....** इस टीका का नाम भी आत्मख्याति है। आहाहा!

नव तत्त्व की योग्यता से उत्पन्न हुई पर्याय, तो इस भेद में से निकलकर... आहाहा! इस भेद की दृष्टि है, वह उठाकर; अपनी दृष्टि द्रव्यस्वभाव में जोड़ने से उसे द्रव्य का अनुभव होता है; वह अनुभव है तो पर्याय परन्तु वह द्रव्य के आश्रय से अनुभव हुआ, उसको यहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान का अनुभव कहा जाता है। आहा! समझ में आया? **और यह अनुभूति है, सो आत्मख्याति है....** आत्मा की पहचान है। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का पिण्ड प्रभु, ज्ञान का सागर, गुण का गोदाम, अनन्त गुण का गोदाम प्रभु है। आहा! ऐसे द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि देने से अनुभूति होती है, वह अनुभूति सम्यक् आत्मख्याति है। उस अनुभूति में आत्मा प्रसिद्ध हुआ; भेद में आत्मा प्रसिद्ध नहीं होता। आहाहा! भेद में तो राग की पर्याय उत्पन्न होती है।

श्रोता : अनुभूति ज्ञान की पर्याय है?

समाधान : ज्ञान की पर्याय है परन्तु वह ज्ञान की पर्याय त्रिकाली के आश्रय से हुई है न? तो पर्याय तो कहा.... अनुभूति है पर्याय परन्तु किसकी अनुभूति की? त्रिकाली द्रव्य की अनुभूति, त्रिकाली द्रव्य की अनुभूति है; अनुभूति की पर्याय में त्रिकाली द्रव्य नहीं आता परन्तु त्रिकाली द्रव्य की सामर्थ्य है, वह अनुभूति में आता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात बापू! वर्तमान में तो बहुत गड़बड़ हो गयी है। पहले सम्यग्दर्शन की बात में गड़बड़ हो गयी। हैं? आहाहा! ऐसा प्रभु एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जीवद्रव्य जो स्वभाव त्रिकाली ज्ञायक एकरूप भाव (है), उसके समीप जाने पर अर्थात् नौ तत्त्व के भेद को दूर करके, आहाहा! एक जीव द्रव्यस्वभाव के समीप जाने पर, ज्ञान की पर्याय उस ओर झुकने से, आहाहा! जो आत्मा जैसा है, वैसा अनुभूति में प्रसिद्ध हुआ। वहाँ आत्मा जैसा है, वैसा प्रसिद्ध हुआ। आहाहा! समझ में आया? है न? **यह अनुभूति है, सो आत्मख्याति है....** आहाहा!

यह चैतन्यद्रव्य महाप्रभु सच्चिदानन्द प्रभु, जिनस्वरूपी भगवान का अनुभव करने

पर, उसके सन्मुख झुकने से आहाहा! तब उसको आत्मख्याति (अर्थात्) आत्मा जैसा है, वैसी प्रसिद्धि होती है। अनुभूति में आया कि आत्मा तो ज्ञानस्वरूप अखण्ड है, अनुभूति में आया कि आनन्दस्वरूप भगवान अखण्ड है, अनुभूति में आया कि प्रभुत्व — ईश्वरता से पूरा भरा पड़ा प्रभु है। आहाहा! इस अनुभूति में आत्मा की प्रसिद्धि हुई। आहाहा! इस राग की पर्याय में आत्मा की प्रसिद्धि नहीं होती। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, आदि लाख करोड़ अरब करे.... समझ में आया? वह छहढाला में आता है या नहीं? 'लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ छोड़ सकल जग द्वन्द फन्द निज आतम ध्याओ।' छहढाला में आता है न? परन्तु अर्थ का किसे पता है? पहाड़े बोल जाता है। ऐसा छहढाला में कहा है, परन्तु वस्तु क्या? अनन्त बात की बात... भेद से दूर होकर आत्मा ज्ञायकस्वरूप त्रिकाल शुद्ध चैतन्यघन परमात्मस्वरूप को उर में ध्याओ, ध्यान में उसको ध्येय बनाओ। आहाहा! तब उसको आत्मप्रसिद्धि होती है।

श्रोता : नव तत्त्व द्वन्द्व-फन्द है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो द्वन्द्व-फन्द है, द्वन्द्व है; भेद है, वह द्वन्द्व है; एक रूप में दो प्रकार वह द्वन्द्व है।

श्रोता : द्वन्द्व कहो परन्तु फन्द क्या है?

समाधान : द्वन्द्व कहा न दो, एकरूप में नव प्रकार का द्वन्द्व हुआ तो द्वैत हुआ। आहाहा! भाई! सम्यग्दर्शन और अनुभव का विषय कोई अलौकिक है। कभी किया नहीं, सुनने में आया तो दरकार नहीं की। समझ में आया? आहाहा! पहला धर्म का बीज (दूज) वहाँ से उत्पन्न होता है और दूज होवे दूज (द्वितीया) तो तेरह दिन बाद तो पूर्णिमा होगी... होगी... और होगी।

इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप के अनुभव में अनुभूति हुई, सम्यग्दर्शन हुआ, दूज उगी तो उसको पूर्णिमा अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त होगा, होगा, और होगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी अनुभूति में आत्मा की पहचान है। ख्याति का अर्थ यह किया, पहचान अर्थात् प्रसिद्धि। आत्मा जैसा था, वैसा अनुभूति में प्रसिद्ध हुआ, आहाहा! राग और व्यवहाररत्नत्रय में तो राग की प्रसिद्धि थी, अनात्मा की प्रसिद्धि थी। व्यवहाररत्नत्रय के राग में अनात्मा की प्रसिद्धि थी। आहाहा!

अन्तर में ज्ञायकभाव में समीप जाकर बाहर से — सबसे पर्याय को हटाकर, अन्तर में गुफा प्रभु चैतन्य में.... गुफा लिया है, हाँ! ४९ गाथा है न समयसार की, उसमें जयसेनाचार्य की टीका में 'अनुभूतिरूपी गुफा में अन्दर चला जा' — ऐसा पाठ है, संस्कृत में। आचार्य जयसेन की (तात्पर्यवृत्ति) टीका है। है यहाँ? संस्कृत नहीं? समयसार नहीं? संस्कृत टीका है ४९ (गाथा की) टीका है। अरस, अगन्ध, अरूप, अव्यक्त... उसकी टीका में लिया है कि धर्मात्मा मुनि कहाँ जाते हैं? अपनी निर्विकल्प समाधिरूपी गुफा में अन्दर प्रवेश करते हैं। बाहर की गुफा में तो तू अनन्त बार रहा। पर्वत की गुफा में रहते हैं तो वहाँ धर्म होता है — ऐसा नहीं है। अन्तर चैतन्य भगवान पूर्णानन्द की गुफा अन्दर है। आहाहा! गिरिगुफा-ऐसा पाठ लिया है। अनन्त-अनन्त शान्ति की शोभा से अन्तर में प्रवेश करने से गिरिगुफा में प्रवेश किया, महा परमार्थ परमात्मा की गुफा में प्रवेश किया। आहाहा! कठिन बात भाई! यह तो निश्चय यह है और व्यवहार झूठा है। है? ऐसा यहाँ सिद्ध किया।

और जो आत्मख्याति है, सो सम्यक्दर्शन ही है।.... है? तीन बातें ली हैं कि जो ज्ञायक ध्रुव चैतन्य एकरूप परमात्मस्वरूप, जिनस्वरूप.... घट-घट अन्तर जिन वसै — ऐसा जो भगवान जिनस्वरूपी त्रिकाल है, वस्तुस्वभाव त्रिकाल जिनस्वरूप ही है तो उसके समीप जाने से जो सम्यग्दर्शन होता है, अनुभूति होती है, वह अनुभूति धर्म पर्याय है, उस अनुभूति में आत्मा की प्रसिद्धि हुई, उस अनुभूति में आत्मा का ज्ञान हुआ, उस अनुभूति में आत्मा कैसा है, उसकी पहचान हुई। आहाहा! उसके बिना आत्मा की पहचान नहीं होती। शास्त्र से पढ़े, चाहे जो करे, लाख शास्त्र पढ़े, आहाहा! उससे कहीं आत्मा की प्रसिद्धि नहीं होती। आहाहा! युगलजी! आहाहा!

(जीव ने) ग्यारह अंग तो अनन्त बार पढ़ा है। एक आचारांग में अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक — ऐसे-ऐसे अठारह हजार पद, छत्तीस हजार पद, बहत्तर हजार पद — ऐसे ग्यारह अंग में दुगने करते-करते अन्त तक ले जाना। ऐसे ग्यारह अंग तो अनन्त बार पढ़े हैं। वह तो शास्त्रज्ञान है, शब्द ज्ञान है। बन्ध अधिकार में कहा है — यह शास्त्रज्ञान, वह शब्दज्ञान है, आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! वहाँ

बन्ध अधिकार में लिया है। आचारांग आदि शब्दज्ञान है — ऐसा लिया है, समयसार बन्ध अधिकार में (ऐसा कहा है)। आहाहा! और नव तत्त्व वह व्यवहारदर्शन है और छह काय की दया वह चारित्र है व्यवहार (चारित्र) राग, वह निश्चय नहीं है; वह सत्य नहीं है। आहाहा! सत्य तो भगवान आत्मा पूर्णानन्द स्वभाव की पूर्णता से भरा पड़ा है (वहाँ) एक अंश भी खण्ड नहीं है, एक अंश भी अपूर्णता नहीं है, उसके एक अंश में अशुद्धता नहीं है, जिसमें त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! जो वस्तु है, वह तो त्रिकाल निरावरण है। (समयसार की) ३२० गाथा में आया है, अन्त में ३२० गाथा में जयसेनाचार्य (की टीका में आया है) 'जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्धपारिणामिकपरमभाव लक्षण निज परमात्मतत्त्व / द्रव्य वह मैं हूँ'। समझ में आया? है न यह? यह तो सब व्याख्यान हो गये हैं, बहुत हो गये हैं।

यह है देखो! जयसेनाचार्य की टीका है 'जो सकल निरावरण' — द्रव्य / वस्तु जो है, वह तो त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जिसके आश्रय से अनुभूति होती है, वह सकल निरावरण है — एक। 'अखण्ड' है, उसमें पर्याय का खण्ड नहीं है। 'एक' एकरूप है। 'प्रत्यक्ष प्रतिभासमय' है। ज्ञान की पर्याय में सारा द्रव्य जैसा है, वैसा प्रतिभास में आता है। प्रत्यक्ष ज्ञान की पर्याय में प्रतिभास-जैसा है वैसा भास आता है। आहाहा! 'अविनश्वर' है, त्रिकाल (है)। नाशवन्त कोई चीज उसमें (नहीं है), पर्याय नाशवान् है, केवलज्ञान भी नाशवान है। आहाहा! एक समय की पर्याय है न? नियमसार शुद्धभाव अधिकार में पहली गाथा में लिया है कि संवर, निर्जरा, पुण्य, पाप, केवलज्ञान और ये सब पर्याय नाशवान है। आहाहा! क्योंकि एक समय रहती है। भगवान अन्दर त्रिकाल अविनश्वर है। आहाहा! अरे! और 'शुद्धपारिणामिक-परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ परन्तु ऐसा नहीं भाता कि खण्ड ज्ञानरूप मैं हूँ।' धर्मी पर्याय की — खण्ड की ज्ञान की भावना नहीं करते। आहाहा! यह संस्कृत टीका है, उसका यह गुजराती है। समझ में आया?

यहाँ कहा कि यह त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव... भाई! यह बात अनुभव में लाना भी कोई अलौकिक बात है। आहाहा! इस ओर झुकने से — पर्याय को द्रव्यसन्मुख झुकने

से... पर्याय जो दूर है, राग की ओर जाती है, उस पर्याय को अन्तर में लाना, आहाहा! इसका नाम आत्मा के समीप गये। क्या कहा? जो वर्तमान ज्ञान की पर्याय है, (वह) राग को जानती है और पर को जानने में रहती है, वह पर्याय तो वहाँ रही परन्तु वह पर्याय अन्दर में ला नहीं सके क्योंकि वह पर्याय तो राग की तरफ झुकी है। बाद की पर्याय द्रव्य में से उत्पन्न होती है और वह पर्याय अन्तर में झुकती है — ऐसी बात है। कठिन काम भाई! समझ में आया? उस पर्याय का पति — ज्ञायकस्वभाव... आहाहा! अनुभव में आता है, तब वह वस्तु प्रसिद्ध हुई कि वस्तु ऐसी है — त्रिकाल शुद्ध है, त्रिकाल आनन्द है, त्रिकाल ज्ञायक है, त्रिकाल अखण्ड है, त्रिकाल एक है, त्रिकाल सामान्य है। आहाहा! यह अनुभूति, वह आत्मा की प्रसिद्धि है और आत्मा की प्रसिद्धि, वह आत्मख्याति है और वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! अभी तो धर्म की पहली (सीढ़ी...) आहाहा! ऐसा हुए बिना उसका ज्ञान भी निरर्थक और वह सब व्रत, और तप करे, (वे) सब बालव्रत और बालतप निरर्थक है। स्वभाव के लिये निरर्थक है, परिभ्रमण के लिये सार्थक है। आहाहा!

इस प्रकार यह सर्व कथन निर्दोष है.... अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, यह सर्व कथन निर्दोष है। आहाहा! **बाधा रहित है।** यह टीका हो गयी।

अब भावार्थ (है)। यह अमृतचन्द्राचार्य की टीका हुई। (वे) मुनि — दिगम्बर सन्त (थे) उन्होंने यह टीका बनायी है। आहाहा! तथापि वे कहेंगे कि यह टीका मैंने नहीं बनायी, हाँ! क्योंकि यह तो शब्द की पर्याय है, उसे मैं कहाँ रुचूँ? यह मेरी क्रिया नहीं है, मैं तो स्वरूप में गुप्त हूँ। आहाहा! मैं तो अपने स्वरूप में गुप्त हूँ, मैं राग में नहीं आता। टीका का विकल्प आया तो उस राग में मैं नहीं आता। आहाहा! टीका की पर्याय मैंने की — ऐसा हे जीवों! ऐसा मोह मत करो, यह कहते हैं। ऐसा मोह करके न नाचो कि मैंने टीका बनायी है और टीका से तुम्हें समझाया है — ऐसा मत समझो। प्रभु! आहाहा! वस्तु की स्थिति ऐसी है। आत्मा, रजकण की पर्याय का कर्ता नहीं हो सकता। आहाहा!

यह तो पूरे दिन मैंने किया... मैंने किया, यह किया... आहाहा! मैं समझाता हूँ मैं स्पष्ट वाणी निकाल सकता हूँ, धीरे से बोल सकता हूँ, जोर से बोल सकता हूँ... आहाहा!

श्रोता : यह तो सही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब मिथ्याभाव है। हमारे वे कैलाशचन्दजी पहले नहीं बोलते थे, कैलाशचन्दजी बुलन्दशहर (वाले) — धीरे से बोलो, जोर से बोलो, जोर से — तुम्हारे कहाँ भाषा है ? जोर से बोलो। आत्मा जोर से बोल नहीं सकता और धीरे से बोल नहीं सकता। आहाहा! गजब बात है प्रभु! क्या हो ? तत्त्व का पता नहीं और उल्टे रास्ते चढ़ गया है और मान बैठे हैं कि हम कोई धर्म करते हैं धर्म। आहाहा! अब जो भ्रम में गया, वह भगवान के पास कैसे जा सकेगा ? आहाहा! समझ में आया ? भगवान अर्थात् आत्मा, हाँ!

भावार्थ - भावार्थ है ? **इन नव तत्त्वों में, शुद्धनय से देखा जाये तो जीव ही एक चैतन्य-चमत्कारमात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है,....** नव तत्त्व की भेद की पर्याय में से देखो तो सम्पूर्ण नव तत्त्व में सामान्यद्रव्य त्रिकाल चैतन्य चमत्कार भरा है। आहाहा! नव तत्त्व में पर्यायभेद, **शुद्धनय से देखा जाये तो,....** द्रव्यस्वभाव से देखा जाये तो जीव ही एक चैतन्य चमत्कारमात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है। आहाहा! **इसके अतिरिक्त....** इससे भिन्न... **भिन्न-भिन्न नवतत्त्व कुछ भी दिखाई नहीं देते।** आहाहा! स्वभाव पूर्णानन्द का देखने से, वहाँ नवतत्त्व का भिन्न-भिन्न है नहीं, दिखेंगे कहाँ से ? वहाँ तो अकेला भगवान आत्मा पूर्णानन्द है। आहाहा! **जब तक इस प्रकार जीवतत्त्व की जानकारी जीव को नहीं है,.....** आहाहा! जब तक इस प्रकार जीवतत्त्व एकाकार ज्ञायकभाव का अनुभव नहीं करते **जीव को नहीं है, तब तक वह व्यवहारदृष्टि है,....** पर्यायबुद्धि है। एक अंश को माननेवाला है, मूढ है। आहाहा! 'पर्यायमूढापरसमया' प्रवचनसार ९३ गाथा। आहाहा! एक समय की पर्याय में (अपनत्व) मानना वह भी मूढ है, सारा द्रव्य भगवान रह जाता है। आहाहा! ऐसी बात! है ? **व्यवहारदृष्टि.... ? भिन्न-भिन्न नवतत्त्वों को मानता है।**

जीव पुद्गल की बन्ध-पर्यायरूप दृष्टि से यह पदार्थ भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं; किन्तु जब शुद्धनय से जीव-पुद्गल का निज स्वरूप भिन्न-भिन्न देखा जाये.... आहाहा! राग का स्वरूप भिन्न है और चैतन्य का स्वरूप राग से भिन्न है — ऐसे देखा जाये.... **तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं हैं;....** आहाहा! है ?

श्रोता : कोई वस्तु नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु कहाँ है ? वह ज्ञान का ज्ञेय हो गया, अपने में नौ भेद है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म विषय! अनन्त काल, अनन्त काल हुआ... साधु भी अनन्त बार हुआ परन्तु उसने आत्मज्ञान नहीं किया। यह नव तत्त्व, राग की क्रिया और पंच महाव्रत के परिणाम... उसमें (छहढाला में) यह कहा न

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो,
पै निज आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥'

यह पंच महाव्रत का परिणाम भी दु:खरूप है। उससे हटकर आत्मा आनन्दमूर्ति है, उस ओर कभी झुकाव नहीं किया। आहाहा! चार गति में भटकता है — ऐसा द्रव्यलिंग अनन्त बार धारण किया, जैनमुनि द्रव्यलिंग-नग्नपना — ऐसा अनन्त बार (धारण किया)। अट्ठाईस मूलगुण पालन किये और फिर अनन्त-अनन्त भव द्रव्यलिंग धारण करके भी (किये)।

अष्टपाहुड़ में-लिंगपाहुड़ में है, अनन्त बार द्रव्यलिंग धारण करके अनन्त-अनन्त चौरासी के अवतार में फिर परिभ्रमण किया। आहाहा! परन्तु उस मिथ्यात्व का नाश और सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति क्या है ? यह ख्याल में लिया ही नहीं। आहाहा! बाकी पण्डिताई, ग्यारह अंग की हुई, लोगों को समझावे, पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार (लोगों को समझावे) — उसमें क्या हुआ ? आहाहा! भाषा की पर्याय जड़, विकल्प उत्पन्न होता है, वह भी अचेतन है। भगवान तो उस अचेतन से भिन्न चैतन्यस्वरूप भगवान जागृतस्वभाव का पिण्ड (है)। आहाहा! उस सन्मुख का झुकाव नहीं किया तो सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान और व्रतादि सब अज्ञान है। आहाहा! है ?

किन्तु जब शुद्धनय से जीव-पुद्गल का निज स्वरूप भिन्न-भिन्न देखा जाये तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं हैं; वे निमित्त-नैमित्तिकभाव से हुए थे.... नैमित्तिक अपनी अवस्था, कर्म निमित्त। निमित्त से हुआ नहीं परन्तु निमित्त है और नैमित्तिक अपनी अवस्था नौ। **इसलिए जब वह निमित्त-नैमित्तिकभाव मिट गया तब जीव, पुद्गल भिन्न-भिन्न होने से अन्य कोई वस्तु (पदार्थ) सिद्ध नहीं हो सकती।** भगवान, भगवानस्वरूप आत्मा है (और) कर्म पुद्गल, पुद्गलरूप है, उसमें

कोई दूसरी चीज भिन्न नहीं होती, **वस्तु तो द्रव्य है और द्रव्य का निजभाव तो द्रव्य के साथ ही रहता है....** ज्ञान-आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता... आहाहा! **निमित्त-नैमित्तिकभाव का अभाव ही होता है, इसलिए शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है।** आहाहा! **जब तक भिन्न-भिन्न नौ पदार्थों को जाने और शुद्धनय से एक आत्मा को न जाने, तब तक पर्यायबुद्धि है।** मिथ्याबुद्धि है। समझ में आया?

कलश - ८

यहाँ, इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :—

(मालिनी)

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं
कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम्॥८॥

अथैवमेकत्वेन द्योतमानस्यात्मनोऽधिगमोपायाः प्रमाणनयनिक्षेपाः ये ते खल्वभूतार्थास्तेष्वप्ययमेक एव भूतार्थः। प्रमाणं तावत्परोक्षं प्रत्यक्षं च। तत्रोपात्तानुपात्त-परद्वारेण प्रवर्तमानं परोक्षं, केवलात्मप्रतिनियतत्वेन प्रवर्तमानं प्रत्यक्षं च। तदुभयमपि प्रमातृप्रमाणप्रमेयभेदस्यानुभूयमानतायां भूतार्थम्, अथ च व्युदस्तसमस्तभेदैकजीव-स्वभावस्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्। नयस्तु द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च। तत्र द्रव्य-पर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्यं मुख्यतयानुभावयतीति द्रव्यार्थिकः, पर्यायं मुख्यतया-नुभावयतीति पर्यायार्थिकः। तदुभयमपि द्रव्यपर्याययोः पर्यायेणानुभूयमानतायां भूतार्थम्, अथ च द्रव्यपर्यायानालीढशुद्धवस्तुमात्रजीवस्वभावस्यानुभूयमानतायाम-भूतार्थम्। निक्षेपस्तु नाम स्थापना द्रव्यं भावश्च। तत्रातद्गुणे वस्तुनि संज्ञाकरणं नाम। सोऽयमित्यन्यत्र प्रतिनिधिव्यवस्थापनं स्थापना। वर्तमानतत्पर्यायादन्यद् द्रव्यम्।

वर्तमानतत्पर्यायो भावः। तच्चतुष्टयं स्वस्वलक्षणवैलक्षण्येनानुभूयमानतायां भूतार्थम्, अथ च निर्विलक्षणस्वलक्षणैकजीवस्वभावस्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्। अथैवममीषु प्रमाणनयनिक्षेपेषु भूतार्थत्वेनैको जीव एव प्रद्योतते।

श्लोकार्थ : [इति] इस प्रकार [चिरम्-नव-तत्त्व-च्छन्नम् इदम् आत्मज्योतिः] नव तत्त्वों में बहुत समय से छिपी हुई यह आत्मज्योति [उन्नीयमानं] शुद्धनय से बाहर निकालकर प्रगट की गई है, [वर्णमाला-कलापे निमग्नं कनकम् इव] जैसे वर्णों के समूह में छिपे हुए एकाकार स्वर्ण को बाहर निकालते हैं।[अथ] इसलिए अब हे भव्य जीवों! [सततविविक्तं] इसे सदा अन्य द्रव्यों से तथा उनसे होनेवाले नैमित्तिक भावों से भिन्न, [एकरूपं] एकरूप [दृश्यताम्] देखो। [प्रतिपदम् उद्योतमानम्] यह (ज्योति), पद-पद पर अर्थात् प्रत्येक पर्याय में एकरूप चित्चमत्कारमात्र उद्योतमान है।

भावार्थ : यह आत्मा सर्व अवस्थाओं में विविधरूप से दिखाई देता था, उसे शुद्धनय से एक चैतन्य-चमत्कारमात्र दिखाया है; इसलिए अब उसे सदा एकाकार ही अनुभव करो, पर्यायबुद्धि का एकान्त मत रखो — ऐसा श्री गुरुओं का उपदेश है ॥८॥

टीका - अब, जैसे नवतत्त्वों में एक जीव को ही जानना भूतार्थ कहा है, उसी प्रकार एकरूप से प्रकाशमान आत्मा के अधिगम के उपाय जो प्रमाण, नय, निक्षेप हैं वे भी निश्चय से अभूतार्थ हैं, उनमें भी यह आत्मा एक ही भूतार्थ है (क्योंकि ज्ञेय और वचन के भेदों से प्रमाणादि अनेक भेदरूप होते हैं)। उनमें से पहले, प्रमाण दो प्रकार के हैं — परोक्ष और प्रत्यक्ष। उपात्त[१] और अनुपात्त[२] पर (पदार्थों) द्वारा प्रवर्ते वह परोक्ष है और केवल आत्मा से ही प्रतिनिश्चितरूप से प्रवृत्ति करे सो प्रत्यक्ष है। (प्रमाण ज्ञान है। वह ज्ञान पाँच प्रकार का है - मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल। उनमें से मति और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं, अवधि और मनःपर्ययज्ञान विकल-प्रत्यक्ष हैं और केवलज्ञान सकल-प्रत्यक्ष है। इसलिए यह दो प्रकार के प्रमाण हैं।) वे दोनों प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय के भेद का अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं; और जिसमें सर्व भेद गौण हो गये हैं — ऐसे एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।

१. उपात्त = प्राप्त। (इन्द्रिय, मन इत्यादि उपात्त पर पदार्थ हैं।)

२. अनुपात्त = अप्राप्त। (प्रकाश, उपदेश इत्यादि अनुपात्त पर पदार्थ हैं।)

नय दो प्रकार के हैं — द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। वहाँ द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु में द्रव्य का मुख्यता से अनुभव कराये सो द्रव्यार्थिक नय है और पर्याय का मुख्यता से अनुभव कराये सो पर्यायार्थिक नय है। यह दोनों नय द्रव्य और पर्याय का पर्याय से (भेद से, क्रम से) अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं; और द्रव्य तथा पर्याय दोनों से अनालिंगित (आलिंगन नहीं किया हुआ) शुद्धवस्तुमात्र जीव के (चैतन्यमात्र) स्वभाव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।

निक्षेप के चार भेद हैं — नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। वस्तु में जो गुण न हो उस गुण के नाम से (व्यवहार के लिए) वस्तु की संज्ञा करना सो नाम निक्षेप है। 'यह वह है' इस प्रकार अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व स्थापित करना (- प्रतिमारूप स्थापन करना) सो स्थापना निक्षेप है। वर्तमान से अन्य अर्थात् अतीत अथवा अनागत पर्याय से वस्तु को वर्तमान में कहना, सो द्रव्य निक्षेप है। वर्तमान पर्याय से वस्तु को वर्तमान में कहना, सो भाव निक्षेप है। इन चारों निक्षेपों का अपने-अपने लक्षणभेद से (विलक्षणरूप से — भिन्न-भिन्नरूप से) अनुभव किये जाने पर वे भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं और भिन्न लक्षण से रहित एक अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर वे चारों ही अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं। इस प्रकार इन प्रमाण-नय-निक्षेपों में भूतार्थरूप से एक जीव ही प्रकाशमान है।

भावार्थ - इन प्रमाण, नय, निक्षेपों का विस्तार से कथन तद्विषयक ग्रन्थों से जानना चाहिये; उनसे द्रव्यपर्यायस्वरूप वस्तु की सिद्धि होती है। वे साधक अवस्था में तो सत्यार्थ ही हैं क्योंकि वे ज्ञान के ही विशेष हैं। उनके बिना वस्तु को चाहे जैसे साधा जाये तो विपर्यय हो जाता है। अवस्थानुसार व्यवहार के अभाव की तीन रीतियाँ हैं : प्रथम अवस्था में प्रमाणादि से यथार्थ वस्तु को जानकर ज्ञान -श्रद्धान की सिद्धि करना; ज्ञान-श्रद्धान के सिद्ध होने पर श्रद्धान के लिये प्रमाणादि की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु अब यह दूसरी अवस्था में प्रमाणादि के आलम्बन से विशेष ज्ञान होता है और राग-द्वेष-मोहकर्म के सर्वथा अभावरूप यथाख्यात चारित्र प्रगट होता है; उससे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। केवलज्ञान होने के पश्चात् प्रमाणादि का आलम्बन नहीं रहता। तत्पश्चात् तीसरी साक्षात् सिद्ध अवस्था है, वहाँ भी कोई

आलम्बन नहीं है। इस प्रकार सिद्ध अवस्था में प्रमाण-नय-निक्षेप का अभाव ही है ॥१३॥

कलश - ८ पर प्रवचन

इस अर्थ का कलश कहते हैं। लो, आठवाँ कलश है न

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं
कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम्॥ ८॥

इति अर्थात् **इस प्रकार चिरम्-नव-तत्त्व-च्छन्नम् इदम् आत्मज्योतिः** आहाहा! **नव तत्त्व के भेद में बहुत समय से छिपी हुई....** नव तत्त्व के भेद में, यह वस्तु है यह छिप-ढँक गयी। आहा...हा...! भेद की-नव तत्त्व की पर्यायबुद्धि में यह द्रव्यस्वभाव ढँक गया। आहाहा! है? **शुद्धनय से बाहर निकालकर प्रगट की गई है,....** ऐसी आत्मज्योति जो छिपी थी; पर्याय के पीछे अन्दर द्रव्यस्वभाव ढँका दिखता था, उस शुद्धनय से स्वभाव पर दृष्टि करने से वह भाव प्रकाशित हुआ। नव की पर्याय में रुकने से द्रव्यस्वभाव ढँक गया था, छिप गया था, उसे अन्तर में शुद्धनय से देखने पर आत्मा प्रकाशित होता है। है? आहाहा!

शुद्धनय से बाहर निकालकर प्रगट की गई है,.... जैसे वर्णों के समूह में छिपे हुए एकाकार स्वर्ण को.... सोना होता है न सोना, सोना। अग्नि में ताव देते हैं न, तो भिन्न-भिन्न रंग होते हैं, सोने के रंग में (भिन्न-भिन्न रंग होते हैं) परन्तु उसमें सोना तो एकरूप भिन्न है। समझ में आया? वैसे आत्मा में नौ प्रकार की पर्याय भिन्न-भिन्न है परन्तु उससे आत्मा तो उससे भिन्न है। आहाहा! संवर-निर्जरा और मोक्ष की पर्याय से भी भिन्न है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? **इसलिए अब, हे भव्य जीवों!....** आचार्य महाराज सम्बोधन करते हैं 'अथ' अब, हे लायक जीवों! **सततविविक्तं इसे सदा अन्य द्रव्यों से....** अन्य पदार्थों से **उनसे होनेवाले नैमित्तिक भावों....** विकार से **भिन्न...** अन्य द्रव्य

से भिन्न और अन्य द्रव्य के निमित्त से अपने में हुआ विकार, उससे भी भगवान भिन्न है। आहाहा! **एकरूप देखो....** एकरूप देखो।

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर;
समल विमल न विचारिये, यही सिद्धि नहीं और॥

हमारे वीरजीभाई वकील थे। इस काठियावाड़ में दिगम्बर के अभ्यासी वीरजीभाई वकील जामनगर थे। जो पहला अभ्यास था, उनका। वह पुराना... ९१-९२ वर्ष में स्वर्गस्थ हो गये, तो वे यह बारम्बार कहते थे, समयसार नाटक की बात है 'एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर; समल विमल न विचारिये, यही सिद्धि नहीं और॥' समयसार नाटक के शब्द हैं। एकरूप देखिये... वस्तु को एकरूप है — ऐसा देखो! देखिये, जानिये रमि रहिये इक ठौर.... और उसमें रमना, ज्ञायकभाव में देखना, ज्ञायक की श्रद्धा करना, और ज्ञायक में रमना। 'समल विमल न विचारिये' अर्थात् वह द्रव्यरूप निर्मल है और दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद से, व्यवहार से मलिन, दोनों का विचार छोड़ देना। 'समल विमल न विचारिये'। सोलहवीं गाथा का है। समझ में आया? दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद है, वह व्यवहार है। राग आदि की बात तो एक ओर रखो; और वहाँ तो ऐसा लिया है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो पर्याय में भेद हैं, वह व्यवहार है, उसे मलिन कहने की पद्धति है — ऐसा लिया है। आहाहा! राग तो मलिन है ही, परन्तु एक में तीन पर्याय का भेद करके देखना वह भी व्यवहार है और विकल्प उत्पन्न होता है; अतः मलिन है। आहाहा! तो यहाँ यह कहते हैं। देखो, है न?

एकरूप देखो.... आहाहा! आहा! **यह (ज्योति), पद-पद पर....** पद-पद पर **अर्थात् प्रत्येक पर्याय में एकरूप चित्चमत्कारमात्र उद्योतमान है।....** आहा! प्रत्येक पर्याय में भगवान तो भिन्न चैतन्य-चमत्कार ज्योति प्रकाशमान है। वह पर्याय में कभी आयी नहीं। आहाहा! ऐसा चैतन्य पाताल, चैतन्य का पाताल ध्रुव, उसे एकरूप देखो। आहाहा! अरे..! कठिन काम है ऐसा। एक तो इस दुनिया के व्यवसाय के कारण फुरसत नहीं। उस जापानी ने — इतिहासवाले ने कहा था। जापानी व्यक्ति ने (कहा था कि) बनियों को जैनधर्म मिला और बनिये व्यवसायी से फुरसत में नहीं होते, पाप के कारण

(फुरसत नहीं है) पूरे दिन यह धन्धा... धन्धा... धन्धा। यहाँ तो पहले से बहुत कहते हैं — दुकान का धन्धा बाईस घण्टे और तेईस घण्टे तथा स्त्री-पुत्र... अर...र...! अकेले पाप के व्यवसाय में पड़े हैं, गहरे कुएँ में अब उसे आत्मा के सन्मुख की झुकाव की बात करना। है? यह फँस गया है, यह फँस गया है। ग्राहक में और अपने में यह मेरा पुत्र और यह मेरा ग्राहक और यह मेरी आमदनी, पचास हजार की एक लाख की आमदनी, मेरे दस लाख की आमदनी.... है?

श्रोता : मेरा लड़का बड़ा सरकारी अधिकारी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा अधिकारी... ऐसा मिथ्या अभिमान (करता है) किसका लड़का? वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य कभी आत्मा का होता है? आहाहा! (लड़के का) शरीर परद्रव्य है, उसका आत्मा परद्रव्य है तो मेरा लड़का आया कहाँ से तेरे। समझ में आया? शास्त्र (में) तो यह कहा नहीं सोलहवीं गाथा में? (मोक्षपाहुड़ गाथा १६ में कहा है) परदव्वाओ दुग्गई.... स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब परद्रव्य है, उसकी ओर लक्ष्य करेगा तो दुर्गति अर्थात् राग उत्पन्न होगा। आहाहा! (मोक्षपाहुड़) सोलहवीं गाथा में आया है। परदव्वाओ दुग्गई — परद्रव्यरूपी यह शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, धन्धा, परिवार सब परद्रव्य है। परद्रव्य का लक्ष्य करने से तो तेरी दुर्गति ही होगी। तुझे राग उत्पन्न होगा, सिद्ध गति नहीं होगी। आहाहा! और यहाँ तक कहते हैं कि देव-शास्त्र-गुरु हम हैं, हमारी ओर तेरा लक्ष्य होगा तो भी तेरी दुर्गति / राग होगा। आहाहा! कठिन बात है भाई!

श्रोता : तो हमें करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न! उसे छोड़कर अन्तर्दृष्टि करना। लाख बात हो या चाहे जितनी... अरबोंपति बड़ा इन्द्र हो, तो क्या है? वह तो परचीज है। आहाहा! अन्दर में पर से हटकर... अरे...! इस पुण्य और पाप के विकल्प से हटकर.... अरे...! एक समय की पर्याय के प्रेम से हटकर, आहाहा! अपना ज्ञायकभाव एकरूप है। है न? प्रत्येक पर्याय में एकरूप, चाहे तो निगोद की पर्याय हो और चाहे तो केवली की पर्याय हो... आहाहा! प्रत्येक पर्याय में एकरूप चित्चमत्कारमात्र उद्योतमान है। आहाहा! चैतन्य चमत्कार! आहाहा! अपने क्षेत्र में रहने पर भी, परक्षेत्र — लोक-अलोक का जाननेवाला-देखनेवाला

चैतन्य-चमत्कार है। आहाहा! अपने क्षेत्र में रहते हुए, परक्षेत्र — लोक और अलोक, उसे अपने में रहते हुए पर को जानता है — ऐसा चैतन्य-चमत्कार भगवान का अनुभव करो, उसकी दृष्टि करो, उसका आश्रय लो, उसका अवलम्बन करो तो सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! चारित्र तो कहाँ रहा? वह तो दूसरी चीज है। ऐसा सम्यग्दर्शन होने के बाद, आत्मा में — आनन्द में लीन होना, आनन्द में लीन होकर अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव का भोजन करने का नाम चारित्र है।

श्रोता : वह तो चौथे काल में (है परन्तु) पंचम काल में.... ?

समाधान : पंचम काल में? इस पंचम काल के गृहस्थ को तो कहते हैं, पंचम काल के साधु। ये तो पंचम काल के साधु हैं — कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य (पंचम काल के साधु हैं) और पंचम काल के जीव को तो कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य कब हुए हैं? दो हजार वर्ष पहले। अभी तो पंचम काल में हुए हैं। अमृतचन्द्राचार्य भी हजार वर्ष पहले हुए हैं। हजार वर्ष पहले तो वे यहाँ जीते थे, भरतक्षेत्र में जीवित थे, अमृतचन्द्राचार्य! तो वे कहते हैं, अत: पंचम काल के सन्त, पंचम काल के जीव को कहते हैं। चौथे काल के सन्त, पंचम काल के (जीवों को) ऐसा नहीं कहते। आहा...! अन्दर में काल-वाल कुछ नहीं रोकता। आहा...! यहाँ **एकरूप चित्चमत्कारमात्र उद्योतमान है।** आहाहा!

भावार्थ - यह आत्मा सर्व अवस्थाओं में विविधरूप से दिखाई देता था,.... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा, पर्याय-पर्याय में भिन्न-भिन्न प्रकार से पर्याय दिखती थी। कोई अल्प पर्याय, कोई विशेष पर्याय, कोई राग, कोई अराग — ऐसे भिन्न-भिन्न पर्याय दिखती थी। **उसे शुद्धनय से एक चैतन्य-चमत्कारमात्र दिखाया है;....** आहाहा! **इसलिए अब उसे सदा एकाकार ही अनुभव करो,....**! हे भव्य जीवों! जिन्हें संसार का नाश करना हो, आहाहा! तो एकाकार अनुभव करो। अन्दर प्रभु एकरूप है, उसका अनुभव करो। आहाहा! कुछ पता नहीं लगता, ऐसा मार्ग है।

पर्यायबुद्धि का एकान्त मत रखो.... पर्याय है अवश्य, नौ भेद है अवश्य परन्तु एकान्त मत रखो कि उससे मेरा कल्याण होगा और वही आत्मा है — ऐसा मत रखो।

पर्याय है; पर्याय नहीं है — ऐसा नहीं है। पर्यायबुद्धि का एकान्त मत रखो, अन्दर द्रव्यबुद्धि में आत्मा को ले जाओ। आहाहा! ऐसा। **ऐसा श्री गुरुओं का उपदेश है।** लो, यह सन्तों-दिगम्बर सन्तों, पंचम काल के अनुभवियों, केवलज्ञान के पथानुगामियों सन्तों का यह उपदेश है। समझ में आया? ऐसा टीकाकार-अर्थकार ने (कहा है)। भाई! यह तो सन्त-दिगम्बर मुनि ऐसा कहते हैं। आहाहा! पंचम काल में भी कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य आदि साधु-सन्त बहुत हुए, उन सब गुरुओं का यह उपदेश है। नौ के भेद की पर्यायबुद्धि छोड़कर एकरूप त्रिकालस्वभाव पर दृष्टि करो तो तुम्हारा जन्म-मरण का अन्त आयेगा। वरना चौरासी के अवतार तुझे करने पड़ेंगे प्रभु! आहाहा!

टीका - अब, जैसे नवतत्त्वों में एक जीव को ही जानना भूतार्थ कहा.... एकरूप जीव को जानना यह सत्य बात है। **उसी प्रकार एकरूप से प्रकाशमान आत्मा के....** भगवान तो एकरूप चिदानन्दवस्तु है। उसके **अधिगम के उपाय.....** उसे जानने के जो उपाय, आहाहा! **प्रमाण, नय, निक्षेप हैं....** आहाहा! नव तत्त्व को तो छुड़ाया परन्तु अब कहते हैं कि यह आत्मा जो त्रिकालवस्तु है, उसको जानने के जो उपाय प्रमाण, नय, और निक्षेप (हैं) आहाहा! **वे भी निश्चय से अभूतार्थ हैं,....** प्रमाण, नय और निक्षेप ज्ञान (आत्मा को) पहचानने के (उपाय) हैं, वे भी अभूतार्थ, झूठे हैं। आहाहा!

श्रोता : कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी किया नहीं तो इसे कठिन लगता है। आहाहा! वरना सत् है, सरल है, सर्वत्र है। कहाँ नहीं परमात्मा? स्वयं नहीं है? किस पर्याय में विद्यमान भगवान नहीं है? समझ में आया? और किस पर्याय में, चाहे जो पर्याय हो, भगवान विद्यमान परमात्माद्रव्य विराजमान है परन्तु उस पर नजर नहीं करते तो कठिन लगता है। आहाहा! **उनमें भी यह आत्मा एक ही भूतार्थ है....** नय, निक्षेप, प्रमाण से जानना, वह भी परलक्ष्य से ज्ञान है, वह भी अभूतार्थ / झूठा है। यह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)